जैन दर्शन में पर्यावरण संरक्षण का सिद्धांत

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जैन धर्म 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त का पालन करने वाला है। भगवान महावीर का प्रकृति से गहरा संबंध रहा था। उन्होंने जंगल में जीव–जन्तु ही नहीं वरन् पेड़–पौधें के बीच रह कर अपनी साधना की थी तथा रिजुपालिका नदी के किनारे एक शाल के पेड़ के नीचे ही उन्हें आत्मज्ञान (केवल ज्ञान) की प्राप्ति हुई थी। जैन धर्म की पवित्र पुस्तकों (आगमों) में न केवल जीव–जन्तु वरन् पेड़–पौधों पर दया करने का उपदेश दिया गया है। पृथ्वी (मिट्टी), जल, वायु, वनस्पति और अग्नि सभी में जीवन है। इन सभी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए तथा इन्हें नष्ट होने से बचाना चाहिए। जैन धर्म में प्रकृति के उपभोग की बजाय उपयोग करने का उपदेश दिया गया है। उपभोग से प्राकृतिक संसाधन नष्ट होते हैं जो आगे चलकर जल, वायु और प्रकृति के प्रदूषित होने का कारण बनते हैं। जैन दर्शन में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति को जीव माना गया है। ये सभी मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं तथा संतुलन बनाये रखने के लिए एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। किसी एक तत्त्व के असंतुलन से समूचा पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः भगवान महावीर ने कहा विवेकी मनुष्य, पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा के परिणाम को जानकर न स्वयं इनकी हिंसा करें, न दूसरों से इनकी हिंसा करवाएँ और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करें। पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता अपितु इनके आश्रित अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकायों की हिंसा नहीं करने के सन्दर्भ में जैन दर्शन के जो निर्देश है, वे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान हैं। पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे जीवों को पृथ्वीकायिक जीव कहा जाता है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों वाली है। शस्त्र परिणति से पूर्ण वह सजीव कही गयी है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वीकाय की हिंसा की जाती है। वैज्ञानिकों ने यह आशंका व्यक्त की है कि इसी प्रकार यदि पृथ्वी का दोहन होता रहा तो ये भण्डार कुछ ही समय में समाप्त हो जाएंगे। प्रकृति की दृष्टि में एक पौधे का जीवन भी उतना ही मूल्यवान है, जितना एक मनुष्य का है।

पेड़–पौधे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में जितने सहायक हैं, उतने मनुष्य नहीं हैं, वे तो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। द्रव्य के मुख्यतः दो भेद है–जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। जीव या आत्मा जैन दर्शन में एक स्वतंत्र द्रव्य है। इसका लक्षण है–चेतना। चेतना को जीव का असाधारण धर्म बतलाया गया है–चेतना लक्षणो जीवः। अजीव द्रव्य वे द्रव्य हैं जिसमें चेतना नहीं होती। अजीव द्रव्य के पांच भेद है– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

भगवान् महावीर द्वारा प्रज्ञप्त छह जीव निकाय हैं–पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक। पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है वे जीव पृथ्वीकायिक जीव कहलाते हैं। पृथ्वी कायिक जीव जन्मना इन्द्रिय विकल, अन्ध, वधिर, मूक, पंगु और अवयवहीन मनुष्य की भांति अव्यक्त चेतनावाले होते हैं। शस्त्रों से छेदन–भेदन करने पर जैसे जन्मना इन्द्रिय विकल पुरुष को कष्टानुभूति होती है, वैसे ही पृथ्वीकायिक जीवों को भी होती है। जल ही जिन जीवों का शरीर है, वे जलकायिक जीव कहे जाते हैं। जल के आश्रित अनेक जीव होते हैं वे जलकायिक जीव नहीं हैं, किन्तु वे जल में उत्पन्न होने वाले त्रसकायिक जीव हैं। सब प्रकार के जल ओले, कुहरा, ओस ये सब जलकायिक जीवों के शरीर हैं। इन जीवों के शरीर सूक्ष्म होने के कारण दिखायी नहीं देते। जिस प्रकार इन्द्रिय सम्पन्न मनुष्य के पैरादि का शस्त्र से भेदन करने पर उसे अपार कष्टानुभूति होती है, वैसे ही जलकायिक जीवों को भी होती है। जल–कायिक जीवों में केवल स्पर्शेन्द्रिय होती है। अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, वे अग्निकायिक जीव हैं। जो अग्निकायिक लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह अपनी आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। खद्योत के शरीर की तैजस परिणत रात्रि में प्रकाशमय होकर प्रदीप्त होती है, उसी प्रकार अग्नि में भी जीव के प्रयोग विशेष से आविर्भूत प्रकाश शक्ति का अनुमान किया जाता है। वायु ही जिन जीवों का काय है उन्हें वायुकायिक जीव कहते हैं। वायुकायिक जीव अतिसूक्ष्म होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। संसार में जितने भी प्रकार की वायु है वह इसी काय के अन्तर्गत है। वायुकायिक जीव जन्मना इन्द्रिय विकल मनुष्य की तरह अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। स्थावर कायिक जीवों में वनस्पतिकायिक जीवों की चेतना अत्यधिक स्पष्ट होती है। पृथ्वी आदि में वनस्पति की तरह चैतन्य स्पष्ट नहीं होता। वनस्पतिकायिक जीवों की चेतना अधिक स्पष्ट होती है।

अजीव दव्यों में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य आते है। सृष्टि की रचना इन्हीं द्रव्यों के सहयोग से हुई है। जैन दर्शन में संसार को अनादि और अनन्त मानते हुए जगत को यथार्थ सत्ता के रूप में परिभाषित किया गया है। जगत स्वयं में स्वतंत्र अस्तित्ववान है। यह अपनी सत्ता के लिए किसी चेतन पर आधारित नहीं है। चेतन और अचेतन तत्वों से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है और ये दोनों तत्व पर्यावरण के मुख्य अवयव है। जैनधर्म में इन दोनों तत्वों के संरक्षण की बात कही गयी है। भगवान महावीर ने प्रकृति में आत्मतत्व को देखकर और जानकर उसके संरक्षण के लिए मानव को उपदेश दिया। जिससे पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है।